Chapter-6

षष्ठ परिच्छेद :

" गुजरात के सन्तों द्वारा प्रयुक्त विशिष्ट काव्य प्रकार "

षष्ठ परिच्छेद

"गुजरात के सन्तों द्वारा प्रयुक्त विशिष्ट काव्य-प्रकार"

गुजराती सन्तवाणी के साहित्यिक सौंदर्य का मूल्यांकन करते समय पिछले परिच्छेद में इन सन्तों द्वारा प्रयुक्त प्रमुख छन्दों का परिचय दिया जा चुका है, छन्दों की ही तरह काव्य-रूपों के भी विशिष्ट प्रयोग इन्होंने किये हैं । साखी, सबद : पद :, रमैनी इत्यादि प्रचलित प्रमुख काव्य प्रकारों के साथ साथ इन गुजराती सन्तों ने बारमासी, कक्का, मसनवी, छप्पा तथा गुजराती वैशिष्ट्य सूचक गरबी-गरबा, घोलु, आख्यान, जकड़ी, होली आदि विभिन्न काव्य-प्रकारों का प्रयोग किया है । इन काव्य-प्रकारों में प्रबन्ध एवं मुक्तक दोनों शैलियाँ समाविष्ट हैं । प्रबन्ध रचनाओं में आख्यान अथवा चरित काव्य, मसनवी, गीता आदि विशेष उल्लेखनीय हैं जिनमें इनके रचयिताओं ने प्राय: पूर्ववर्ती सन्तों के चरित्र तथा पौराणिक कथाओं का वर्णन किया है । गीता तथा समनवी आदि में कैवलपद का बोध कराया गया है । सन्तों की मुक्तक रचनाओं में बारमासी, गरबी-गरबा, कक्का, घोलु, आरती, जकड़ी, लावनी, गज़ल, छप्पा, साखी, रमैनी, पद इत्यादि प्रमुख हैं । प्रस्तुत परिच्छेद में हम सन्तों द्वारा प्रयुक्त प्रमुख काव्य प्रकारों का परिचय देंगे ।

प्रबन्ध रचनाएँ :

१. आख्यान अथवा चरित काव्य :

आख्यान गुजराती साहित्य का एक विशिष्ट काव्य प्रकार है। आख्यान की विशिष्टता उसकी प्रबन्ध-पटुता में है । यह काव्य-रूप इतना अधिक लोकप्रिय रहा है कि मध्यकालीन गुजराती साहित्य का एक पूरा युग-खण्ड आख्यान युग के नाम से अभिहित किया जाता है । आख्यानसम्राट प्रेमानंद का नाम गुजरात के आख्यानकारों में सर्व प्रसिद्ध है ।

गुजरात के सन्तों ने वस्तुत: आख्यान और चरित काव्य के बीच कोई विभेदक रेखा नहीं खींची है । इन सन्तों में चरित-काव्य

लिखने की परम्परा माडण से लेकर छोटम तक मिलती है । इनका प्रमुख विषय सन्तों की चरित गाथा है । धामी-सम्प्रदाय के अनेक सन्तों की 'वीतक' गाथाएँ भी इसी कोटि की हैं । उनकी हिन्दी रचनाओं में गोरख-चरित, कबीर-चरित तथा ध्रुव-चरित आदि प्रमुख हैं । गुजरात के सन्तों में माडण, मुकुन्द गूगली, भोजा, छोटम, महात्यमराम, समर्थराम आदि ने हिन्दी गुजरातीमें श्रेष्ठ चरित काव्यों की रचना की है ।

२. मसनवी :

यह सूफियों की एक विशिष्ट देन है । इस शब्द का व्यवहार प्राय: बड़े काव्य के लिए किया जाता है । आकार में बृहद् होने के कारण कवियों को पूर्ण स्वतन्त्रता का अवसर मिलता है । मसनवी के सम्बन्ध में जामी का मत है कि 'मसनवियाँ काव्य में आख्यान, प्रेम-प्रबन्ध, वीर काव्य तथा कथापरक होती हैं । मसनवियों में कवियों को शैली तथा तुक के सम्वन्ध में स्वतन्त्रता होती है ।'[१] मसनवियाँ प्राय: पाँच बहरों में लिखी जाती हैं- हजज, रमल, सारी, खफीफ, मुतकारिब । किन्तु फारसी की मसनवियों में जिन छन्दों का प्रयोग हुआ है उनका उपयोग हिन्दी के प्रेमाख्यानों में प्रतीत नहीं होता । भाषा की दृष्टि से उत्तरीभारत के प्रेमाख्यान प्राय: अवधी भाषा में [illegible] हैं जबकि दक्षिण और गुजरात के प्रेमाख्यानों की भाषा 'दक्खिनी' अथवा 'गूजरी' है जिस पर अरबी-फारसी का गहरा प्रभाव है । गुजरात के सूफी सन्तों ने अपने ढंग की अनेक समनवियाँ लिखी हैं जिनमें मुहम्मद अमीन रचित 'युसुफ-जुलेखा' तथा खूब मुहम्मद रचित 'खूब-तरंग' विशेष उल्लेखनीय हैं ।

---

१. 'मध्ययुगीन प्रेमाख्यान' डॉ.श्याम सुन्दर पाण्डेय , पृ.२५३ । से उधृत ।

३. कडवा तथा ऊथलो :

कड़वा संस्कृत के `कडवक`का प्राकृत रूप है, जिसका अर्थ विभिन्न प्राकृत छन्दों की मिश्र रचना के रूप में किया जाता है ।[१] आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने `कडवक` को अपभ्रंश काव्य का प्रमुख काव्य प्रकार मानते हुए यह कहा है कि `पज्झटिका या अरिल्ल छन्द की गई पंक्तियाँ लिखकर कवि घत्ता या ध्रुवक देता है । कई पज्झटिका, अरिल्ल या ऐसे ही किसी छोटे छन्द को देकर अन्त में घत्ता या ध्रुवक, यह कडवक है ।`[२] वस्तुत: कडवा आख्यान काव्य का एक अभिन्न अंग है । श्री के.ह.ध्रुव ने कड़वा को अंग्रेजी `कैन्टो` अथवा संस्कृत `सर्ग` के समकक्ष बताया है । सन्तों ने अपनी प्रबन्ध रचनाओं में तथा स्वतन्त्र रूपेण कडवाबद्ध रचनाएँ की हैं । अखाकृत `अखेगीता` और प्रीतमकृत `एकादश-स्कन्ध` आदि इसी कोटि की रचनाएँ हैं ।

ऊथलो कड़वा का ही एक विशिष्ट अंग है ।[३] इसके अन्तर्गत कही गयी वस्तु का सार तथा आगे की घटना का संकेत रहता है । सन्तों ने इस प्रकार की स्वतन्त्र रचनाएँ भी की हैं । उदाहरणार्थ —

`राम गरीब निवाज, बिरद संभारिए,
पतित उधारन राम, अब न विसारिए ।

ऊथलो

`बिसारिए नहीं बिरद अपनो महा पाप से हम भरे,
निगम की सुन साख श्रवणै, शरण तोरे अनुसरे ।
अनुसरे प्रभु शरण तोरे, त्याग के कारण नहीं,
मन दौड़े सो हाथ नावे पंच बाण मारे मही ।
साख साधु नाम गीता, शरण आये तारिए,
पतित पावन बिरद तेरो, क्युं न दास उधारिए ।-दास ।

१.देखिए— Anals of Bhandarkar oriental Research Institute, B.O.R.J. Vol.17, page 49.
२.देखिए—`हिन्दी साहित्य का आदिकाल` पृ.१०१ ।
३.देखिए `साहित्य विवेचन` श्री.के.ह.ध्रुव भाग.२, पृ.३१९ ।

४. गोष्ठी : संवाद :

इसका अर्थ बहुधा उस वार्तालाप से लिया जाता है जो ज्ञान-वर्द्धन के हेतु किया गया हो ।[१] मराठी में तो अबभी सामान्य बातचीत के अर्थ में `गोष्ठी` शब्द का प्रयोग होता है । `गोष्ठी` अथवा `गुष्टि` लिखने की परम्परा नाथपंथी जोगियों के काल से चली आ रही है । ऐसी गोष्ठियों के अन्य नाम `बोध` अथवा `संवाद` भी मिलते हैं ।[२] गुजराती संतों की `प्रश्नोत्तर-मालिका`, `हस्तामलक`, `गुरु-शिष्य-संवाद` और `रविभाण-प्रश्नोत्तरी` आदि इसी प्रकार की रचनाएँ हैं ।

५. गीता :

जैसाकि हम पहले कह चुके हैं कि सन्तों की दार्शनिक विचार धारा पर गीता का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है । यही नहीं इन गुजराती सन्तों ने इस नाम से अनेक गीताएँ भी रची हैं । यथा अखाकृत अखेगीता, गोपालदासकृत गोपालगीता, प्रीतमदासकृत सरसगीता, रविसाहबकृत भाणगीता, वस्ताकृत गुरुगीता, कृष्णदासकृत ज्ञानगीता आदि इसीप्रकार की रचनाएँ हैं जो प्रबन्धात्मक शैली में लिखी गयी हैं । ये गीताएँ प्राय: दो प्रकार की हैं-:१: संवादात्मक-यथा `भाणगीता` `ज्ञानगीता`। :२: कड़वाबद्ध-यथा `अखेगीता`। रीति-रिवाजों एवं बाह्याचारों में फँसी हुई जनता को सच्चे केवल पद का बोध कराना ही इनका प्रमुख विषय है । गुरु-स्तुति, गुरुमहात्म्य आदि अन्य विषयों पर भी कतिपय गीताएँ रची गयी हैं । वस्तुत: गुजरात के सन्तों की प्रबन्ध रचनाओं में `गीता` एक विशिष्ट काव्य प्रकार है ।

---

१. आ. परशुराम चतुर्वेदी, `संतकाव्य`, पृ.३७ ।
२. `गोरख-गणेश गुष्टि`, `महादेव-गोरष गुष्ठि`, `मछींद्र-गोरष बोध`, `लक्ष्मणबोध`, `हनुमानबोध`, `मुहम्मद बोध,` `सुलतान बोध`, `भूपालबोध` आदि ।

मुक्तक रचनाएँ :

१. साखी :

सन्त काव्य का सर्वाधिक लोकप्रिय काव्य प्रकार साखी रहा है। साखी वा दोहा को आदिग्रंथ में 'सलोक' कहा गया है।[१] इसका कारण संभवत: संस्कृत के श्लोक की भाँति आकार में लघु तथा बहु प्रचलित होना है। साखी दोहा का पर्यायवाची नहीं यद्यपि संतकाव्य में यह दोहा के लिए रूढ़सा हो गया है। दोहा के अतिरिक्त साखी की योजना चौपाई, सोरठा तथा छप्पय आदि छन्दों में भी मिलती है। अत: साखी छन्द न होकर सन्तों का विशिष्ट काव्य प्रकार है जिसका अर्थ प्राय: उस काव्य-विधान से लिया जा सकता है जिसमें किसी सन्त ने अपने साक्षात अनुभव के बल पर प्राप्त किये हुए ज्ञान की प्रतिष्ठा की हो।[२] वस्तुत: इन्होंने स्वानुभव के द्वारा जीवन में जिन सत्यों की उपलब्धि की, उन्हींको साखियों में अभिव्यक्त किया है। इस रूप में साखी सन्तों के स्वानुभव की मंजूषा है। कबीर ने साखी की महत्ता बताते हुए कहा भी है :-

'साखी आँखी ग्यान की, समुझि देखु मन माँहि
बिन साखी संसार का, झगरा छूटत नाँहि।[३]

कबीर की साखियों की भाँति गुजरात के सन्तों ने भी विभिन्न अंगों में साखियों की रचना की है। प्रीतम का 'साखी-ग्रन्थ' इस दृष्टि से एक विशाल ग्रन्थ है जो २४ अंगों में विभाजित है तथा जिसमें कुल ६३८ साखियाँ हैं। अखा तथा छोटम ने विभिन्न अंगों में उच्चकोटि की साखियों की रचना की है।[४] अखा की समस्त साखियाँ १०७ अंगों

---

१. आदि ग्रन्थ में कबीर के २४२ 'सलोक' संग्रहीत हैं।
२. हि.नि.का.दा. डा.गोविन्द त्रिगुणायत पृ.३७६।
३. कबीर-बीजक, पृ.१२४।
४. देखिए — 'अक्षयरस' पृ.१७३-३७६।

मैं विभाजित हैं , तथा जिनकी संख्या १५०० के आसपास बैठती है । ८४ अंगों में विभक्त वस्तों की २६४१ साखियाँ भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं । महात्यमराम कृत `शब्द बाण सुधासिन्धु' इसीप्रकार की साखियों में लिखी गयी एक बृहद् रचना है । गुजरात के अन्य हिन्दी सेवी सन्तों ने भी बोध प्रद साखियों की रचना की है ।

२. रमैनी :

कबीर बीजक में `रमैनी' शब्द का प्रयोग स्तुति वर्णन[1], उपदेशप्रद पद्य[2]; तथा [redacted] लोकोपकार[3] के उद्देश्य को लेकर हुआ है, इससे यह भी प्रतीत होता है कि कबीर से पूर्व भी इस काव्य-प्रकार का प्रचलन सबदी तथा साखियों की भाँति था ।[4] इस शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतैक्य नहीं । संत विचारदास ने [redacted] इसे `रामणी' शब्द का रूपान्तर कहते हुए इसका विषय `जीवात्मा की संस्मरणादिक क्रीड़ाओं का सविस्तर वर्णन' बताया है ।[5] आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार यह रामायण का अपभ्रंष्ट रूप है ।[6] डॉ. त्रिगुणायत ने इसका सम्बन्ध लोकगीत से जोड़ते हुए कहा है कि — `मेरी समझ में आध्यात्मिक गीतों के लिए रमैनी शब्द राम के आधार पर गढ़ लिया गया [redacted] होगा ।'[7] इसका मूल संभवत: गोरखनाथ की `प्राण संकली' में खोजा जा सकता है । गोरखनाथ की इस कृति में मात्र चौपाइयाँ हैं । कबीर ने दोहे-चौपाई में इसकी रचना की है । गुजरात के सन्तों ने इसे रमैनी, रमणी, रैवेणी आदि विभिन्न नामों से अभिहित किया है । अखा की `एकलक्ष रमणी' सर्व प्रसिद्ध है । गुजरात के अन्य रैवेणीकारों में हम देवी उपासक

---

१. कबीर बीजक पृ.२ ।
२. वही पृ.१७ ।
३. वही पृ.११८ ।
४. नाभादासकृत भक्तमाल—छप्पय ६१ ।
५. कबीर साहब का बीजक, पृ.२८६,६० ।
६. कबीर साहित्य की परख, पृ.१६३, ६४ ।
७. हि.नि.का.दा. पृ.६७६ ।

दयानंद, अखा प्रणालिका के सन्त लालदास तथा प्रीतम आदि के नाम प्रमुख रूप से गिना सकते हैं । दयानंद रचित रेवेणी की भाषा गुजराती मिश्रित हिन्दी है जिसमें प्रत्येक आठ पंक्तियों के पश्चात् एक साखी है । लालदासकृत `ज्ञान रेवेणी` में ज्ञान का रूपक बाँधा गया है । प्रीतमकृत `रेवेणी` चौपाई छन्द में योजित है । इन सबका विषय ब्रह्म की सर्वव्यापकता एवं उसकी अखंड सत्ता की अभिव्यक्ति है । उदाहरणार्थ —

`जगत कहो ! जगदीश कहो ! माया कहो कोई काल,
पूरण ब्रह्म गाइये हो, द्वैत नहीं कोई काल।
सत्, त्रेता, द्वापर, कलि चारूँ न्यारे चाल,
सदा मते विज्ञान के, राम रमत एक साल।`
—अखा ।

३. पद :

कबीर आदि सन्तों ने अध्यात्मविषयक पदों को `सबद` की संज्ञा से अभिहित किया है, किन्तु गुजराती सन्तों ने इस नाम से प्राय: पदों की रचना अल्पप्रमाण में ही की है । उन्होंने पद का व्यापक अर्थ में प्रयोग किया है । संतों द्वारा रचित फूलणा पद, विष्णुपद, होरी पद, लावणी, धोल, धमार आदि विषय, संगीत अथवा छन्द की दृष्टि से भले ही एक दूसरे से भिन्न प्रतीत होते हों, किन्तु मूलत: ये पद ही हैं । सन्तों ने छप्पा, चाबखा, काफी आदि विभिन्न नाम भी इसी दृष्टि से सूचित किये हैं । सन्तों द्वारा रचित स्वतन्त्र पदों में नीति, उपदेश, वैराग्य के साथ-साथ योग, भक्ति तथा रहस्य की काव्यात्मक अभिव्यक्ति हुई है । गुजरात की हिन्दी संतवाणी में अखा, वस्ता, धीरा, भोजा, मनोहर, रवि, प्रीतम, मोरार, छोटम तथा अनवर आदि सन्तों के पद अत्यन्त हृदय स्पर्शी एवं मार्मिक बन पड़े हैं ।

४. बारहमासी :

बारमासी, बारहमासी अथवा बारह-मासा ऋतु-काव्य का ही एक प्रकार है । इसके अन्तर्गत बारह महीनों की समस्त ऋतुओं का वर्णन किया जाता है । ऋतुओं का वर्णन प्राय: विरहिणी नायिका द्वारा कराया जाता है अत: विप्रलम्भ शृंगार की निष्पत्ति का होना स्वाभाविक है । ऋतु-वर्णन के साथ-साथ नायिका की विरहावस्था का चित्र भी निरूपित होता है और अन्त में अधिक मास के अन्तर्गत नायक के साथ संयोग दिखाकर इसका सुखात्मक अन्त किया जाता है । विनयचन्द्रसूरिकृत 'नेमिनाथ चतुष्पादिका' : सं. १३०० : संभवत: सर्वप्रथम जैन बारह मासी काव्य है । तत्पश्चात् जैनेतर कवियों ने इसे खूब परिपुष्ट किया है संतों ने बारहमास की व्याख्या ज्ञानवाद के ढंग पर की है । गुजराती में प्रीतम के 'ज्ञान मास' सर्व प्रसिद्ध हैं । हिन्दी में दास, जगन्नाथ, निर्मलदास और केवलपुरी आदि सन्त कवियों द्वारा रचित ज्ञानमास उपलब्ध होते हैं । ज्ञानमास के आधार पर ही इन्होंने 'तिथि' तथा 'वार' की रचना भी की है । आधुनिक सन्तों तक यह परम्परा स्पष्ट दीख पड़ती है । रंग अवधूत के ज्ञानमास अंग्रेजी महीनों के आधार पर भी लिखे गये हैं । आधुनिकता का पुट लिये हुए ऐसे ज्ञानमास अत्यन्त भाव प्रवण एवं बोधप्रद बन पड़े हैं ।[1]

बारहमासा वर्णन की प्रवृत्ति उत्तरी भारत के सन्तों में भी खूब दिखायी देती है । 'आदिग्रन्थ' में अर्जुनदेव ने चैत से फाल्गुन तक के नाम लेकर उनमें किये जानेवाले कामों के विषय में विविध उपदेश दिये हैं । संत सुंदरदास ने एक विरहिणी नायिका का विरह चैतमास से आरम्भ किया है । गुलाल एवं भीखासाहब के 'बारहमासा' आषाढ़ से प्रारम्भ होते हैं । इनमें सिद्धान्तों का निरूपण है । संत

१. 'आनन्द अवधूती' पृ.८५ ।

तुलसी का बारहमासा श्रावण मास से आरम्भ होता है । संत शिवदयाल का बारहमासा संभवत: सबसे बड़ा है जिसमें संसारी जीवों की दशा, गुरू-उपदेश तथा काया के भीतर बारह-कमलों का वर्णन मिलता है ।[१] गुजरात के सन्तों के ज्ञानमास भी प्राय: चैत से शुरू होकर फाल्गुन में पूर्ण होते हैं ।

इस दृष्टि से 'दास' के ज्ञानमास चैत से शुरू होते हैं जिसमें 'गुरु-बानी' की महिमा और चित्त की अज्ञानता पर प्रकाश डाला गया है । 'दास' के 'ज्ञानमास' की एक विशेषता यह है कि बीच-बीच में ऊथलो द्वारा पूर्व कथन का निष्कर्ष तथा उपदेश भी दिया गया है ।

"चित्त रे चैत अज्ञानी, श्रवणे सुन गुरु की बानी,
छन छन काया छीजे, अपना साधन स्मरण कीजे,
दिन जावे सो न आवे, अवसर बीते फिर पछतावे,
झूठा घर परिवारा, तामें कहा भूले गंवारा ।

ऊथलो

गमार तामें कहा भूले, क्यों प्रभु के घर रहे,
दास कहे कुछ चेत प्राणी, गुरु वचन हिरदे ग्रहे ।

oo oo oo

फागन प्रगट ही आया, गुरु कथ उपदेश सुनाया,
बारे मास बखाना, तामें अक्षर चार समाना ।
भाव भक्ति हेत कीजे, मनुष्य जन्म सफल कर लीजे,
मन वांछित पावे, जो कोई शरण राम की जावे ।

ऊथलो

जावे जो कोई शरण गुरु की, दास सो उधरे सही,
मनसा वाचा कर्मणा करि, वेद संमति पू कही ।"

—दास ।

१. संतकाव्य, आ.परशुराम चतुर्वेदी, पृ.३६ ।

"चैत्र येहि चिंता मुझे, रहे दिवस और रैन,
सत्यासत्य विवेक बिन, हो कैसे सुख चैन ?
चैन उनको है कहाँ, जो वेद के प्रतिकूल है,
पाप में तत्पर सदा और पुण्य से निर्मुल है ।
जिनकी न पति से प्रीत है, उनको नरक के शूल है,
स्वामी से जिनको प्रेम हो, सैया पे उनको फूल है ।"
—जगन्नाथ ।

५. गरबी-गरबा :

गरबी की परम्परा अति प्राचीन है जिसका मूल हमें गुर्जर देशियों में मिलता है । आ.रावल के अनुसार पदों में से गरबी सर्जित हुई जबकि 'कड़वा' में से गरबा । नरसिंह मेहता के पद आज भी रसा गरबा की भाँति चक्राकार गति में गाये जाते हैं । इस प्रकार की परम्परा हमें दयाराम तक दृष्टिगत होती है । इन्हें गरबी-गरबा भिन्न-भिन्न नामों से कब अभिहित किया गया इसका कोई ठोस आधार नहीं मिलता । फिरभी, सत्रहवीं शती में ....भाणदास ने 'गरबी' नाम से अधिकांश पदों की रचना की है ।[१] दयाराम की गरबियाँ गुजरातभर में प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय हैं । इससे पूर्व प्रीतम, राजे, रणछोड़, धीरा आदि भक्त कवियों की गरबियाँ उपलब्ध होती है । धीरा की गरबियाँ [redacted] विभिन्न भाषाओं का परिचय भी कराती हैं ।

गरबी आकार में संक्षिप्त तथा ललित होने के कारण [redacted] गीतितत्त्वों से पूर्ण होती है, जबकि गरबा आकार में विस्तृत एवं वर्णनप्रधानता के कारण कथागीत के अधिक निकट है ।

---

१. 'मध्यकालीन गुजराती साहित्य' पृ.५४ ।

इन दोनों के बीच दूसरा अन्तर विषय परक भी है । भाणदास की गरबियों में योगमाया तथा भवानी की स्तुति है । रणछोड़जी दीवान और वल्लभ के गरबों में देवी की शक्ति साधना है, जबकि दयाराम की गरबियों का विषय राधा और कृष्ण का प्रेम मिलन है । गरबा नवरात्रि में देवी की उपासना के लिए अब भी गुजरात भर में गाये जाते हैं । 'गर्भदीप' से गरबा की की व्युत्पत्ति इस रूप में सहज ही मानी जा सकती है ।[1] गुजरात की स्त्रियाँ आज भी सुन्दर वस्त्रों एवं आभूषणों से सज्जित होकर नवरात्रि के दिनों में गर्भ में दीपक रखे हुए छिद्रमय मिट्टी के घड़े : गर्भदीप : को सिरपर धारण कर बड़े चाव से गरबे गाती हैं । श्री नरसिंहराव दिवेटिया ने एक अन्तर और भी बताया है कि गरबा पुरुष गाते हैं जबकि गरबी स्त्रियाँ गाती हैं किन्तु गुजरात में सर्वत्र ऐसा नहीं है । सौराष्ट्र एवं उत्तर गुजरात में पुरुष गरबी गाते हैं और स्त्रियाँ गरबा गाती हैं । दयाराम स्वत: तानपूरे की ध्वनिपर गरबी सुनाया करते थे । श्री अनंतराय रावल के अनुसार एक स्थान पर बैठकर गाये जाने वाले विशिष्ट गीत प्रकार के रूप में 'गरबी' की संयोजना हुई होगी ।[2] संक्षेप में गरबी की निम्न लिखित विशेषताएँ हैं —

१. प्रगीत काव्यानुकूल संक्षिप्तता ।
२. गत्यात्मक संश्लिष्ट योजना ।
३. एक ही भाव का आलेखन ।
४. संगीतात्मकता ।

इस रूप में हम गरबा को वर्णनात्मक काव्य तथा गरबी को गीति काव्य में स्थान दे सकते हैं । संतों की कतिपय गरबियाँ यहाँ

---

१. 'नाना छिद्र घटोदरस्थित महादीपप्रभास्वरम्,
ज्ञानं यस्यतु चक्षुरादि करणद्वारा बहि: स्पन्दते ।'
दक्षिणामूर्ति स्तोत्र, : म.सा.प्र., पृ.२४७ से उधृत :

२. 'मध्यकालीन गुजराती साहित्य', पृ.५५ ।

दृष्टव्य हैं —

'ब्रन्दावन की सुंदर शोभा, कैसी कहूँ सजनी रे लोल,
सुन्दर फूल्यो आसो मास, निरमली रजनी रे लोल ।
सुन्दर फूले सरद रत शोभा, सोहामणी रे लोल,
फूले सोल कला संपूरण, ससी तणी रे लोल ।
फूले चंपा, मोगरा, मालती, चमेली कली रे लोल,
फूले तरु पल्लव विसाल, अठारु भार फूली रे लोल ।
फूले धीर समी रे यमुना, सुंदर सोहामणी रे लोल,
फूले सुन्दर व्रज की भोम, जगमग कंचन कली रे लोल ।'
—गवरीबाई ।[1]

'हिन्दुस्तानी कहे कनैया :जी:,
पकड़ ठुस्सा मारूंगी ।
तेरे बाबा से जा कहियो,
जसोदा से नहिं हारूंगी ..... १.
नित उठ मेरे घर आवे,
एक दिन तो घु मा डुं गी ।'..२.
—धीरा ।[2]

'काया गरबो रे सद्गुरुजी घडियो,
चीरा लई आसोने साठे जड़ियो,
बत्रीस वीसज रे खीली माही मारी,
नवे प्रकारे रे गरबो लीधो धारी ।'
—रविसाहब ।[3]

---

१. 'गवरी कीर्तन माला,' पृ.१०१ ।
२. 'धीराकृत परचूरण कविता' पृ.११:२५ ।
३. 'र.मा.मो.वा.,' पृ.१६:१० ।

६. कक्का :

कक्का अथवा ककहरे की संयोजना सर्वप्रथम जैन साधुओं द्वारा की गयी प्रतीत होती है । तेरहवीं शती के प्रमुख काव्य स्वरूपों में इसका उल्लेख किया जाता है। आगे चलकर यही जैनेतर कवियों में सन्तों का अत्यन्त प्रिय काव्य प्रकार बन गया । गुजरात का शायद ही कोई ऐसा सन्त बचा हो जिसने कक्का की संयोजना न की हो। 'मातृका' और 'कक्क' नाम से लिखी जाने वाली सुभाषितावलियों में हमें सामान्यत: चउप्पई और दोहों के दर्शन होते हैं । सन्तों द्वारा रचित कक्कों में प्राय: ज्ञान चर्चा ही प्रमुख विषय है । गुजराती साहित्य में धीरो, प्रीतम तथा जीवणदास आदि के ज्ञान कक्का अत्यन्त बोधप्रद हैं । कुबेर के शिष्य नारणदासकृत 'सिद्धान्त बावनी' तिरेपन अक्षरों में विभाजित इसी प्रकार की कृति है इसमें ककहरा के क, ख, ग, घ, न, च, छ, ज, झ आदि अक्षरों को लेकर सात-सात युगल पंक्तियाँ लिखी गयी हैं । प्रत्येक अक्षर के अन्त में तीन तीन दोहे हैं । नृसिंहाचार्य के ज्ञानकक्का भी अत्यन्त बोधप्रद हैं जो कुंडलिया छन्द में रचित हैं । यथा—

> 'कक्का तोकुं क्या कहे, जगत भलो सब कीन,
> काम कियो सो अति बुरो, कियो सबनकुं दीन,
> कियो सघनकुं दीन, पुनि छिन छिन में तावे,
> भलो कोहु ना कहे, दहे त्यों त्योंहि सतावे,
> दमे तुझे नरसिंह, हँसी मन आवत मोको,
> भलो जगत सब कीन, कहे क्या कक्का तोको ।'
>
> —नृसिंहवाणी विलास, पृ.२३० ३१ ।

७. धोल अथवा मंगल गीत :

अपभ्रंश युग के जैन काव्यों में रास के साथ संयोजित तथा इसके बाद स्वतन्त्ररूपेण लिखे गये मंगलगीतों को 'धवल' नाम से अभिहित

किया गया है । मध्यकालीन जैनेतर कवियों में यह काव्य-स्वरूप अत्यन्त लोकप्रिय होता हुआ दलपतराम तक दिखायी देता है । `धवल`प्राय: धार्मिक अवसरों पर गाया जाता है । गुजरात के सन्त-कवियों ने प्रचलित धार्मिक त्योहारों को लेकर ऐसे अनेक मंगल-गीतों की रचना की है जिनमें अध्यात्म दर्शन की फलक मिलती है । सन्तों के कतिपय धवल-गीत यहाँ दृष्टव्य हैं—

`हरजु को रक्षाबंधन आई,
कनक थाल में मोदिक मेवा, बहन सुभद्रा लाई ।..ह०
देत आशिष दंपति मेवा, निरखत ही निज नार,
हय गज रथ भंडार मान बहु, देते ही अपार ।.. ह०
अति आनंद उमंग मनमोहन, चले बहन घर द्वार,
दासन के प्रभु सब दुख भंजन जे जे प्राण आधार ।[१]:

`बधाई बाजत घर-घर आज ।
अपने जन के रक्षा कारन प्रगट भये महाराज ।।१।।
आनंद रूप सदा भरपूरण सेतु तिरन को फाफ ।
अकल अरूप रूप धरि फिर फिर बाँधे धर्म की पाज
जन्म नहिं सो जन्म दिषावत करत जनन के काज ।
अनुभवानंद भजत ताँहा भासत साथ लिए सब साज ।।३।।
—अनुभवानंद ।

६. आरती :

गुजराती सन्तों ने आरती, थाल, हालरड़ा आदि की रचना भी विशिष्ट प्रकार से की है । ब्रह्म की आरती करने के लिए पाँच तत्त्वों का देवल है, जिसमें देवता विराजमान है । वह `प्रेम प्यारा` `काया नगर` में बैठा है, जहाँ ओहं सोहं का अजपा जाप हो रहा है। जिस बेल से प्रेम रस फर रहा है । वह बिना मूल की है और

---

१. नवीन काव्य दोहन, पृ.१८३ ।

पीनेवाला भ्रमर भी पंखहीन है, ऐसे देवल में उन्मुनी आरती उतार रही है ।[1] घट घट में जो सोहं बसता है उसीकी आरती इन सन्तों ने उतारी है । सन्तों की अन्र्मुखी साधना का स्पष्ट चित्र हमें उनके द्वारा रचित इन आरतियों में प्रतीत होता है । उदाहरणार्थ —

'आरती कीजे अंतर माँही, मैं तो घट घट देखा साँही, टेक०
पांच तत्त्व की बनी है आरती, कपट कूड है सब माँही,
गर्व को घी प्रेम को अग्नि, चेता दो तुर्त ही देखो साँही ।
अपने ब्रह्मा विष्णु शिव आरती उतारे, झलमल ज्योत सवाई,
समझे वाको तो सब होवे, ना समझे वाको नवाई ।
पांच पचीस सखी नाचन लागी, शून्य शिखर के माँही,
आप मां आप सोहं समाए गुरुजीए सान बताई ।
दासना दासा बापु भगत धीरा, जाग जगत हरि नाहीं,
जोव शोधो तो मीलत नहीं, पण खेले संतों माँहीं ।'
—बापुसाहेब ।[2]

'पहली आरती मन सुध कीजे, याते कारज सकल ही सीझे,
ऐसी आरती कर मन भाई, अनहद नाद में सुरत लगाई ।
दूसरी आरती सत्संग कीजे, ग्यान गोष्ट कर प्रेमरस पीजे,
ऐसी आरती कर मन भाई, अनहद नाद में सुरत लगाई ।।
तीसरी आरती ध्यान माँहे लागा, अगम अगोचर आतम जागा,
ऐसी आरती कर मन भाई, अनहद नाद में सुरत लगाई ।।'
—गवरीबाई ।

---

१. 'पांच तत्त्व से घडिया रे देवल, देखोजी दिल में देवा रे,
परख अलख कर मुजरा रे साधु, सूरत नूरते कर सेवा रे ।
काया नगर में प्रेम पियारा, देख देख दिल भाया रे,
ओहम् सोहम् दोनुं जाप अजपा, गुरुगमे दरसाया रे ।
बिना मूल की बोल एक बोई, पीयूष । प्रेमरस पीवा रे,
बिना पांख का आया भमरला, बैठा सुधारस पीता रे ।
उन्मुन आरती करे भवानीदास सत् चित सुख मिलाया रे ।' प.प.सं.पृ.२५८,५९ ।

२. 'प्राचीन काव्यमाला' भाग ७, बापुसाहेब कृत कविता, पृ.६१ ।

६. लावणी :

मराठी सन्त साहित्य में लावणी को एक प्रमुख काव्यप्रकार माना गया है ।[१] लावणी में लवण अथवा लावण्य की ध्वनि स्पष्ट निकलती है अत: शृंगार अथवा माधुर्य इसका मुख्य भाव है । लावणी का उद्‌भव महाराष्ट्र में बताया जाता है तथा इसीलिए इसे ख्याल अथवा मराठी गायन का पर्याय भी माना जाता है ।[२]

प्रत्येक लावणी में कम से कम चार चरण होते हैं तथा दो पंक्तियों की टेक होती है । टेक की पंक्तियों में जितनी मात्राएं होती हैं, प्राय: उतनी ही मात्राएं उसके चार चरणों में होती हैं । कभी कभी ऐसा भी होता है कि पाँचवे चरण की तुक टेक की दूसरी पंक्ति के साथ मिला दी जाती है । टेक तथा मिलन के बीच कभी कभी दो अन्य छन्द भी आ जाते हैं । लोक गीत की श्रेणी में आने के कारण हिन्दू मुसलमान दोनों ही इस काव्यस्वरूप के रचयिता पाये जाते हैं । इसकी भाषा सरल एवं अरबी फारसी के शब्दों से युक्त होती है ।

गुजरात के सन्तों ने इसे लावणी ख्याल, लावणी अथवा ख्याल के नाम से अभिहित किया है । गुजरात के सन्तों की लावनियाँ नीति, वैराग्य, भक्ति तथा योग साधना आदि विविध विषयों को लेकर रची गयी हैं । अमरदास की लावणी में मन की व्याख्या है जबकि गणपत राम कृत लावनियों में योग साधना की चर्चा की गयी है । गुजरात के अन्य लावणीकारों में निरांत, छोटम तथा नृसिंहाचार्य आदि सन्तों के नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं । सन्तों की कुछ लावनियाँ यहाँ दृष्टव्य हैं —

---

१. 'हि.म.स.दे.', पृ.२३१ ।

२. वही पृ.२३१ ।

`पानी का ब्रह्मांड बनाया, झाड़ पान पृथ्वी पानी,
चंदा सूरज नवलख तारा चौद लोक चालू पानी,
पानी ब्रह्मा पानी विष्णु पानी सदा शीव की काया,
देव व दनुज नरनार खग पशु जग सौ पानी से अपजाया,
सातु साहेर है पानी का पानी बारा मेघ भरया,
रंग छत्रीस भया पानी का कोई से भेद न जात लह्या,
जो जो कहीए सो सब पानी पानी की सृष्टि सारी,
अजब कला कोई है करता की देखो अपने दिल धारी ।`

—श्री.छोटमकृत `परचुरण कविता` पृ.३५५ ।

`पानी गुरु पानी का चेला, पानी बचा बावा है,
पानी साहेब पानी सेवक, पानी सागर नावा है,
पानी कपडा पानी लड़का, पानी बाग बगीचा है,
पानी चोख्खापानी मेला, पानी ऊँचा-नीचा है,
अणु आदे ब्रह्मांड चराचर, सब पानी की ये माया,
जे करतारे पानी कीना उनसे कोई नहिं डाह्या,
जन छोटम जुगदीश भजेगो सो जनकी है बलीहारी,
अजब कला कोई है करता की देखो अपने दिल धारी।`

—श्री.छोटमकृत `परचुरण कविता` पृ.३५५ ।

अब चलो गुरु घर यार, विषय सब त्यागी,
चल गयी जुवानी क्या प्यार रखो दुर्भागी .... १.
सारी उमर गुजारी घर-घर भिक्षा मांगी,
अजहु न तजत अज्ञान न होत विरागी .... २.
क्या मोहनींद में सोये उठो अब जागी,
यह दुखद विषय की आश दीजिए दागी .... ३.
नरसिंह प्रभुपद ग्रहे, सुजन सोहागी,
जहाँ अखंड सुकी, लहेर, सदा रहे लागी .... ४.

—श्रीमन्नृसिंहाचार्य `नृसिंहवाणी विलास` पृ.१५२,५३ ।

१०. होरी :

धवल गीतों की भाँति गुजरात के सन्तों ने होरी, फाग अथवा बसन्त के नाम से ऐसी अनेक रचनाएँ लिखी हैं जिनमें सन्तों की आध्यात्मिक विरह मिलन की अनुभूति के दर्शन होते हैं । इन पदों में सन्तों की उच्चकोटि की प्रेम व्यंजना एवं रहस्यानुभूति तो है ही, साहित्यिक सौंदर्य की दृष्टि से भी इनका विशिष्ट महत्त्व है । मीराँ के अनेक पदों में इस प्रकार की साहित्यिक अभिव्यक्ति हुई है ।[१] कबीर के पदों में भी कहीं कहीं इस प्रकार की योजना हुई है, किन्तु उनमें दार्शनिकता बोझिल है ।[२] फागुन को आते हुए देखकर अखा की आत्मा पिचकारी भर अपने प्रिय से होली खेलना चाहती है ।[३] कुछ पदों में फागुन के सदा सर्वदा फूले रहने का भी वर्णन मिलता है, ऐसे पदों में ब्रह्मानंद की तीव्र खुमारी है —

'दृष्टादृष्ट मध्ये ही मनोहर, खेलत हरि फाग ।
हो हो होरि कहो चिद शक्ति, उड़त शबद पराग ।।
सदा अखा फुल्या रहे, अनुमेचित चिद्रूप विसाल ।।[४]

---

१. 'फागुन के दिन चार, होरी खेल मना रे ।' मीराँबाई ।

२. 'रितु फागुन नियरानी, कोई पिया से मिलावे,
पिया को रूप कहाँ लग बरनूँ, रूपहि माँहि समानी ।
जो रँग रँगे सकल छवि छाकें, तन मन सभी भुलानी,
यों मत जाने यहि रे फाग है, यह कुछ अकह-कहानी,
कहैं कबीर सुनो भई साधो, यह गत बिरले जानी ।' कबीर वाणी, पृ.२८७, पद ६८।

३. 'आली ! अबको फाग ! मेरो मन सहरात !
नहिं तो, जोबन मेरो यूंहि जात ।।
सकल ऋतु में धन्य वसन्त ।
सबको सार मैं पाया एकान्त ।। अप्रसिद्ध 'अक्षयवाणी' पृ.१८६ ।

४. 'अक्षयरस' पृ.११ ।

सन्तों के फाग वर्णन में कहीं कृष्ण के साथ ब्रज की होली का निरूपण है ।[१] तो कहीं वसन्त से उन्मत्त आत्मारूपी नायिका जंगल के बीच डेरा करना चाहती है ।[२] विरहिणी आत्मा सतगुरु के मन्त्र का जाप जप रही है, जिससे अज्ञानीरूपी तिमिर मिटता जा रहा है । सर्वत्र रूप का प्रकाश हो उठा है और तन का जहर मिट गया है । ऐसी घड़ी में स्वामी के मिलन से सुरत सुहागन हो गयी है ।[३] वैष्णव संस्कारों की पिचकारी से स्फूट सन्तों की यह रंगरेली देखते ही बनती है ।[४]

११. छप्पा :

यह भी छन्द न होकर गुजरात के सन्तों द्वारा प्रयुक्त एक विशिष्ट काव्य प्रकार है । 'अनुभव बिन्दु' में अखा ने जिस छन्द का उल्लेख किया है वह निश्चय ही छप्पा अथवा छप्पय है, किन्तु अखा के लोकप्रिय 'छप्पा' कुछ और ही हैं जिन्हें अखा ने कहीं भी 'छप्पा' नाम से अभिहित नहीं किया है । अत: यह कहना मुश्किल है कि यह नामकरण अखा द्वारा दिया गया है अथवा इसके बाद 'छप्पा' शब्द का प्रयोग स्वत: चल पड़ा । इसकी रचना प्राय: चौपाई के छ: चरणों में की गयी है । शायद यही 'चौपाई षट्पदी' आगे चलकर छपै, छपदी, छपा अथवा छप्पा आदि विभिन्न नामों से अभिहित होने लगी हो । लेकिन, अखा ने तो इस प्रकार की 'षट्पदी' का बन्धन भी सर्वत्र स्वीकार नहीं किया है । अध्ययन से ज्ञात होता है कि ये 'छप्पा' निश्चय ही सामाजिक जीवन तथा

---

१. भीकम साहब, प्रा.का.वि., भाग १, पृ.१६६ ।

२. वही पद ४ पृ.२०० ।

'वसन्त रत आवी रे, मन मेरा आवी रे,
मन मेरा आवी करले जंगल बीच डेरा ।'

३. वही पृ.२०० ।

४. 'रसबस खेलत नित्य फाग, सुरत सागर को नाहीं ताग ।
कहेत अखा भयो रंगरोल, सदा नीरंतर है जकोल ।।'
—गु.व.सो., ह.प्र १२१८ ।

अखा के विचार जगत के स्पष्ट चित्र हैं । इनकी अभिव्यक्ति मौजा के चाबखों की तरह अत्यन्त तीक्ष्ण है । इस परंपरा का अनुसरण गुजरात के कुछ उत्तरकालीन सन्तों में भी मिलता है । निरांत द्वारा रचित ऐसे छप्पा[१] अभिव्यक्ति में कटु होते हुए भी दुरूह न नहीं ।

१२. जकड़ी :

जकड़ी प्राय: जिक्र का ही अपभ्रंशरूप है जिसका अर्थ ध्यान अथवा स्मरण आदि के रूप में किया जाता है । उठते-बैठते, सोते-जागते, खाते-पीते, शोक-हर्ष, बीमारी-तंदुरुस्ती, दावत, पर्यटन, सैर आदि जीवन के तमाम छोटे-मोटे क्रिया-कलापों में ईश्वर का स्मरण ही जिक्र है जिसका प्रमुख हेतु ब्रह्म के साथ आत्मा के शुद्ध सम्बन्ध की याद प्रतिक्षण ताजा करना है । ज़िक्र के भी दो भेद किये जाते हैं—:१: ज़िक्रे जली : प्रत्यक्ष स्मरण : :२: ज़िक्रे ख़फी : अप्रत्यक्ष स्मरण : । ऐसी मान्यता है कि `जली` संघ की साधना है जबकि `ख़फी` हृदय की एकान्त भावना है । `जली` स्तवन है जबकि `ख़फी` योग है ।[२] गुजराती भाषा का `जकडवुं` शब्द बाँधने के अर्थ में प्रयुक्त होता है । इस प्रकार `जकड़ी` से इसकी संगति बिठायी जा सकती है । अर्थात् जिसमें सन्तों ने अपने मस्तिष्क में घूमते हुए विचारों को पकड़ कर बाँधने का जो प्रयत्न किया है, वही जकड़ी है । `जकड़ी` को इस रूप में हम विचार बंधन भी कह सकते हैं ।

सूफी कवियों में `ज़िक्र` का विशेष महत्त्व है । गुजरात के ज्ञानी कवियों में अखा और मांडण की हिन्दी जकड़ियाँ उपलब्ध होती हैं । इनके कुछ उदाहरण यहाँ दृष्टव्य हैं—

१. देखिए—हस्त प्रति, ८७।६।५, डा.ल.पु.नडियाद ।

२. देखिए—`गुजराती साहित्य पर अरबी फारसी नी असर`—भाग-२, पृ.५१६ ।

`मेरा ढोलन ढलकर आया रे ।
हूं दूधे धोऊंगी पाया रे ।
मेरा ढोलन ढलकर आया रे ।
हूं आप सरीखी कीती रे ।
दोऊ जग मैं हुं जीती रे ।
हूं एकमेक कर लीती रे ।
मेरा ढोलन ढलकर आया रे ।

०० ०० ००

घूघरी मोतिन की खाइ रे ।
जब सांइ मिल्या मुज धाइ रे।
तब उमग्या अखा जग मांही रे ।
मेरा ढोलन ढलकर आया रे।`

—अखा ।

`ऊंचे महेल कहेल से कंचन, फूलु सेज बिछाना है,
ताजा माल नवाला हाजर, मन माने तब खाना है ।
हस्ती घोड़ा माल खजाना, मुलक मुलक पर थाना है,
कहे मांडण सुन दोस्त हमारे, थिर ना रहेना जाना है ।

०० ०० ००

प्रेम खेत का बना बगीचा, नाम धणी का ना बोया,
कहे मांडण सुन दोस्त हमारे, क्या जागा फिर क्या सोया।`

— मांडण ।

१३. गज़ल :

यह मूलत: अरबी शब्द है जिसका अर्थ `प्रेमयुक्त भाषा` होता है । दी.ब.कृष्णलाल झवेरी ने गज़ल के विषय मैं कहा है कि `प्यार, सौंदर्य, मन की व्यथा, उन्मत्तता का वर्णन करने वाले शब्द, वियोगजनित दु:खों का वर्णन, प्रेम का रुदन, माशूक के साथ

तादात्म्य हो जाने की चिन्ता, गाल के ऊपर का तिल, रोंगटों की प्रशंसा, माशूक से मिलन की तीव्र आकांक्षा तथा इसके साथ ही सुख चैन का अभाव, बेचैनी, जागरण, अंत:करण को दग्ध कर देनेवाला निश्वास, दु:खार्तनाद, रुदन, अशक्ति एवं शरीर के कृश हो जाने का वर्णन इनके अलावा उसमें अन्य कुछ नहीं होना चाहिए । इस तरह आशिक और माशूक के वियोग की यातना, माशूक की आशिक की ओर से लापरवाही, आशिक की मिलन याचना तथा विज्ञप्ति ... आदि का निरूपण होना चाहिए ।[1] इसके अलावा मद्यसेवी, आनंद, वसन्त सौंदर्य, गुलाब तथा अन्य फूलों से भरे हुए बाग में गीत गाती हुई कोयल अथवा बुलबुल आदि की शोभा का वर्णन भी गज़ल का वर्ण्य विषय माना जाता है । आडम्बरपूर्ण सन्तों तथा फकीरों की कारस्तानी, दम्भ और पाखण्डों का भंडाफोड़ करने के लिए भी गज़ल का सहारा लिया जाता है ।

'गज़ल' वस्तुत: [illegible] फारसी साहित्य की देन है । उर्दू कवियों के प्रभाव से गुजरात के जैन कवियों तक ने गजलों की रचना की है । श्री रामनारायण पाठक के मतानुसार गुजराती में 'गज़ल' के प्रति सर्व प्रथम आकृष्ट होने वाले मस्तकवि बालाशंकर थे ।[2]

गुजरात के सूफी सन्तों की वाणी में 'गज़ल' एक विशिष्ट काव्यरूप है । प्रसिद्ध सूफी गजलकारों में अनवर, सागर तथा सत्तारशाह चिश्ती आदि के नाम प्रमुख हैं । सूफी सन्तों के अलावा छोटम तथा नृसिंहाचार्य द्वारा रचित गज़लें भी मिलती हैं। इन गज़लों में सन्तों ने प्रेम की तन्मयता, ज्ञान की खुमारी के साथ-साथ राष्ट्रीयता एवं देश-प्रेम की अभिव्यक्ति भी की है ।उदाहरणार्थ—

---

१. 'गुजराती गज़लों':प्रस्तावना :,पृ.६,७ ।

२. देखिए—'बृहत् पिंगल'

'इश्क के सदमों से हम रो-रो के चिल्लाते रहे,
ले गया दिलवर तो दिल, हम हाथ फैलाते रहे ।
आह सद अफसोस अब,हमको नहीं आरामो चैन,
दर्द हिजरत में दिवाना बनके भटकाते रहे ।
दे दिया हमने तो दिल तुमको न चाहा तुमने यार,
उम्र भर लोगों की अब हम ठोकरें खाते रहे ।'

—अनवर ।[1]

'हिज्र ने तेरे सनम अब हमें लाचार किये,
तपशे दिल ने अजब तरह के बीमार किये ।
अब मसीहा से हमारा नहीं होने का इलाज़,
इश्क के मर्ज़ ने बस हमको गिरफ्तार किये ।'

—अनवर ।।[2]

'परदेशियों की देश पै नियत बदल गई,
आबाद देश देख के तबियत मचल गई ।
कंपनी जो आई सारी कमाई निगल गई,
लक्ष्मी हमारे देश से युंकर निकल गई ।
एक वख्त हमारा भी था जाहोजलाल का,
खुशहाल सेठ था और खुशहाल दास था ।
भारत की खेती द्वेष की अग्नि से जल गई,
लक्ष्मी हमारे देश से युंकर निकल गई ।'

—सत्तारशाह चिश्ती ।[3]

०० ०० ०० ००

---

१. 'अनवर काव्य' पृ.२६६, गज़ल ४६ ।
२. वही पृ.२४८, गज़ल २८ ।
३. 'सत्तार भजनामृत', पृ.२०५, गज़ल २५ ।